मुखपृष्ठ
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यसुधा
वर्ष: 5, अंक 103, फरवरी(द्वितीय), 2021

# साहित्य में नैतिक मूल्य

डॉ बीना जैन

'नैतिक' शब्द का अर्थ है- "नीति सम्मत।" "नीति" शब्द का संबंध संस्कृत की 'णीय' धातु से है जिसका अर्थ है- 'ले जाना' या 'पथ प्रदर्शन' करना । इस प्रकार नीति वह है जो 'ले जाए' या 'आगे ले जाए।"[1] मूल्य का अर्थ है- निकष, प्रतिमान या कसौटी। मनुष्य के प्रत्येक विचार और कर्म में मूल्य का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। उसमें अनेक प्रकार के गुण-अवगुण और विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियां होती हैं जिनके अनुरूप वह कुछ मूल्य निर्मित करता है लेकिन उसके उन मूल्यों को ही प्रधानता दी जाती है जो समाज के विरोधी न हों बल्कि उस के पोषक हों क्योंकि व्यक्ति की पूर्णता का स्रोत और केंद्र समाज ही होता है।

मानव चिरंतन काल से ही पाशविक वृत्तियों का परित्याग कर, उनसे ऊपर उठकर शिव और सौंदर्य का संधान करता आया है। मानव कर्म में करणीय-अकरणीय का पार्थक्य स्थापित करने के लिए, अच्छाई या शिवत्व को स्थापित करने के लिए जिन मूल्यों की रचना की जाती है वे नैतिक मूल्य की संज्ञा से अभिहित होते हैं। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार "समाज को स्वस्थ एवं संतुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष को उचित रीति से प्राप्त करने के लिए जिन विधि-निषेध मूलक सामाजिक, व्यावहारिक, आचरिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि नियमों का विधान देश- काल और पात्र के संबंध में किया जाता है उसे नीति शब्द से अभिहित करते हैं।"[2] इस अर्थ में व्यक्ति और समाज के कल्याण को दृष्टि में रखकर ही नैतिक मूल्य निर्धारित किए जाते हैं। मूलतः व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की आवश्यकताएं इनकी निर्मिति का आधार होती हैं। यही कारण है नैतिक मूल्य देशकाल सापेक्ष होते हैं। किसी भी समाज या देश की स्थिति और मनोदशा परिवर्तनशील होती है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य या किसी भी जाति की उन्नति उसके विचारों में परिवर्तन उपस्थित करती है जिससे नैतिक मूल्यों की आधारभूत संरचना में बदलाव आता है। इस प्रकार नैतिक मूल्य शाश्वत नहीं होते।

नैतिक मूल्यों से युक्त होकर मनुष्य संस्कृत होता है। ऐसा व्यक्ति ही समाज में प्रशंसा का पात्र होता है। नैतिक मूल्य किसी भी व्यक्ति के गुण- दोष पहचानने का आधार बनते हैं। किसी के चरित्र का आकलन भी

नैतिक मूल्य होते हैं। यदि नैतिकता किसी व्यक्ति को संस्कृत करती है, मानवीय बनाती है तो साहित्य भी पीछे नहीं। वस्तुतः दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का कर्मक्षेत्र समान है। दोनों का लक्ष्य एक है- मानव को मानव बनाए रखना। उसकी क्षुद्रताओं का परिष्कार कर समाज का उन्नयन करना। नैतिक मूल्य वाचिक परंपरा का लंबे समय तक निर्वहन न कर पाने की स्थिति में लिखित परंपरा में अभिव्यक्त हुए और साहित्य उनका सशक्त माध्यम बना।

साहित्य शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ भी इसकी पुष्टि करता है। संस्कृत के 'सहित' शब्द से साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है। 'सहित' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है: 'सहितस्य भावः'- 'सहित' अर्थात 'साथ' का भाव ही साहित्य है। इस अर्थ में साहित्य का अर्थ होता है 'समुदाय'। 'सहित' का एक दूसरा अर्थ भी है- 'हितेन सहितं' अर्थात 'हित के साथ'। हित के साथ होने का भाव ही साहित्य है। इस प्रकार साहित्य लोकहित से जुड़ता है। लोक कल्याण की इस भावना को साहित्य से पृथक नहीं किया जा सकता। "यह सहित शब्द इतना अर्थगर्भ है कि आधुनिक युग में इसका विस्तार एक अन्य आयाम में भी किया गया है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है तो इसलिए कि वह अपने अलावा दूसरों के करने- धरने में रस लेता है, औरों के दुख- सुख में शामिल होता है तथा औरों को भी अपने दुख का साझीदार बनाना चाहता है। यही नहीं बल्कि वह अपने इर्द-गिर्द की दुनिया को समझना चाहता है और इस दुनिया में कोई कमी दिखाई पड़ती है तो उसे बदल कर बेहतर बनाने की भी कोशिश करता है। परस्परता के इस वातावरण में ही प्रसंगवश वह चीज पैदा होती है जिसे साहित्य की संज्ञा दी जाती है। दूसरी ओर जब मनुष्य की कोई वाणी समाज में परस्परता के इस भाव को मजबूत बनाती है तो उसे साहित्य कहा जाता है। इस प्रकार साहित्य में निहित सहित शब्द का यह एक व्यापक सामाजिक अर्थ है।"[3]

मानव चिरंतन काल से ही पाशविक वृत्तियों का परित्याग कर उनसे ऊपर उठकर शिव और सौंदर्य का संधान करता आया है। साहित्यकार की कलम मनुष्य को स्वार्थ से ऊपर उठा कर परमार्थ की दिशा में बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। संसार में व्याप्त अन्याय,पशुता ,क्रूरता और अमानवीयता को देख या किसी जीव को कष्ट या पीड़ा में पड़ा हुआ देख एक साहित्यकार संवेदना से शून्य नहीं हो पाता,उसकी संवेदना जागृत हो उठती है। उसकी वाणी उस कुरूपता को दूर करने का यत्न करती है।उसकी इस अभिव्यक्ति में ही साहित्यिक सौंदर्य का जन्म होता है। आदि कवि वाल्मीकि भी व्याध द्वारा क्रौंच पक्षी के वधोपरांत क्रंदन करते हुए दूसरे पक्षी के दुख से कातर, करुणा संवलित हो मानवीय संवेदना से संयुक्त हो उठते हैं और व्याध को श्रापित करते हैं-

*"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती क्षमाः* "[4] -

हे निषाद तुझे कभी भी शांति न मिले क्योंकि तूने इस क्रौंच के जोड़े में से एक जो काम से मोहित हो रहा था बिना अपराध के ही हत्या कर डाली। अनैतिक कर्म करने वाले निषाद को श्राप ग्रस्त कर दंडित करना वाल्मीकि को धर्म जान पड़ता है। नीति सौन्दर्य का ही आंतरिक रूप है। वस्तुतः वाल्मीकि के मुख से अनायास निकला वह श्राप ही श्लोक के रूप में प्रथम काव्यमयी अभिव्यक्ति है। साहित्य का प्रथम सौंदर्यात्मक स्फोट है जो नैतिक और मानवीय मूल्य को प्रसरित करता है, -मनुष्य में करुणा, दया, सहानुभूति ,अहिंसा, 'जियो और जीने दो' के

नैतिक गुणों को विकसित करता है; सत्य को शिव और सुंदर से युक्त करता है । साहित्य में नैतिक मूल्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है ।

साहित्य जीवन से ही जन्म लेता है । उसका उद्देश्य जीवन की व्याख्या करना ही नहीं वरन् उसे दिशा भी देना होता है। साहित्य जीवन में जीवन डालता है, जीवन को जीने योग्य बनाता है, उसे ऊंचा उठाता है जिससे जीवन को पूर्णता प्राप्त होती है।'[5] अत्यंत प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य में नीतिपरक सूक्तियां और आख्यायिकाएं उपस्थित हैं। हमारा प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद भी इस से रहित नहीं है।संस्कृत साहित्य में 'विदुर नीति', 'बृहस्पति नीति', 'शुक्र नीति', 'चाणक्य नीति' ,भर्तृहरि का 'नीति शतक', पालि की 'जातक- कथाएं' प्राकृत की 'गाहासतसई' तथा अपभ्रंश की 'उपदेश रसायन' आदि कृतियां भारतीय साहित्य को विश्व साहित्य की श्रेणी में स्थान दिलाती हैं । संस्कृत साहित्य से लेकर वर्तमान समय तक यह परंपरा चली आ रही है।इनके प्रणयन के स्वरूप में अंतर अवश्य आया है । मनुष्य जिन पशुवत वृत्तियों से संचालित हो स्वेच्छाचारिता की ओर कदम बढ़ाता है, नैतिक मूल्य उसे अनुशासित करते हैं। भले ही नैतिक मूल्य जातक कथाओं जैसी उपदेशात्मकता से युक्त हो अभिधा में व्यक्त होते हों या नाटकीय द्वंद में या प्रतीकात्मकता में, लेकिन उनका मूल स्वर संवेदना का विस्तार ही होता है।

हिंदी साहित्य की अंतर्वस्तु भी नैतिक मूल्यों को समाहित किए हुए है।भक्तिकाल में तुलसीदास जीवन के विविध विषयों को स्पर्श करते हुए नैतिक मूल्यों की स्थापना करते हैं। तुलसीदास जी ने भी उसी रचना को सार्थक माना है जो लोकहित से जुड़े -

*'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि- सम सब कहँ हित होई।।'*[6]

स्वान्तः सुखाय होने पर भी रामचरितमानस ने मनुष्य के जीवन को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार तुलसीदास की वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है । मानव जीवन की अनेक दशाओं का सन्निवेश उनकी कविता के भीतर है ।'एक ओर वह शुद्ध भगवद- भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोक- पक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौंदर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही लोकधर्म की अत्यंत उज्जवल छटा उसमें वर्तमान है।'[7] उनकी काव्यवस्तु भक्ति, धन, मित्र, स्त्री, माता- पिता, परिवार, गर्व, संसार, मोह-,माया संतोष, उपकार, संगति, विश्वास, दुख- सुख, स्वामी- सेवक, राजा- मंत्री, सज्जन- दुर्जन, भाग्य, मन, ऋण, मूर्ख, समय.... जैसे न जाने कितने विषयों को समेटते हुए व्यापक जीवनानुभव,समाज और संसार के सूक्ष्म विवेचन का परिचय देती है। "तुलसीदास की दृष्टि समाज पर व्यापक रूप में पड़ी थी ,इसलिए उनमें राजनीति और व्यवहार -नीति का समावेश है। "[8] शायद ही जीवन का कोई पक्ष अछूता रहा हो जहां उन्होंने जनता का पथ प्रदर्शन न किया हो। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर नहीं चलती। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। प्राचीन भारतीय भक्ति मार्ग के भीतर भी उन्होंने बहुत सी बढ़ती हुई बुराइयों को रोकने का प्रयास किया। उन्होंने लोक धर्म और भक्ति साधना को एक में सम्मिलित करने का प्रयास किया।"[9]

तुलसीदास की 'रामचरितमानस' एक साहित्यिक कृति होते हुए भी धार्मिक ग्रंथ के रूप में सदियों से भारतीय मानस का निर्माण करती आई है जिसने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उच्चाशयता लाने का प्रयास किया है। इसमें त्याग, क्षमा, उदारता, निर्वैरता, धैर्य, सहनशीलता, संयम आदि अनेक सामाजिक शिवत्व के गुणों की पराकाष्ठा मिलती है। राम एक धर्मनिष्ठ नायक के रूप में चित्रित होते हैं जो पिता की आज्ञा का पालन करना अपना पुनीत कर्तव्य समझते हैं। कैकेयी माता के प्रति किसी भी दुर्भावना से ग्रस्त नहीं होते;भरत के प्रति पूर्ववत स्नेहिल रहते हैं, तनिक भी द्वेष युक्त नहीं होते, छोटी जाति का होने के बावजूद भी केवट के चरण धोते हैं। राजा की मर्यादा के पालन के लिए अपने प्रेम का बलिदान कर देते हैं। तुलसी के रामराज्य की कल्पना वस्तुतः एक नैतिक- मानवीय समाज की स्थापना की चेष्टा है। तुलसीदास ने स्थान स्थान पर नीति- वचन और नैतिक मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है। चित्रकूट में राम की मनोदशा का वर्णन करते हुए भी वह विपत्ति में धैर्य धारण करने की शिक्षा देना नहीं भूलते-

*कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥*
*लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं॥*[10]

यदि तुलसीदास बुरे वक्त में धैर्य धारण करने का मूल्य विकसित करते हैं तो दुष्ट के साथ दुष्टता का प्रतिमान भी गढ़ते हैं।

*'सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीति*
*सहज कृपण सन सुंदर नीति।।'*[11]

मूर्ख व्यक्ति से विनय, कुटिल के साथ प्रेम और स्वभाव से कृपण व्यक्ति से दान भाव जैसी सुंदर नीति की बातें करना व्यर्थ है। पूरा रामचरितमानस नैतिक शिक्षाओं, आचार- व्यवहार से शिक्षित करता है तो उच्च मानवीय मूल्यों से युक्त कर संवेदना का प्रसार भी करता है।

तुलसीदास से लगभग एक शती पूर्व कबीर भी मनुष्य को आचार- व्यवहार, धर्म, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, नारी, निंदा, आडंबर, अहं, गुरु की महिमा,, साधु का संग कपट आदि कई विषयों को अपने पदों और साखियों का विषय बना नैतिक मूल्यों का प्रसार करते हैं।

*'घट घट में वही साईं बसता, कटुक वचन मत बोल रे।'*[12]

घट- घट यानी प्रत्येक मनुष्य में एक ईश्वर की उपस्थिति का विचार प्रस्तुत कर एक और यदि वे जाति पर आधारित वर्ण- व्यवस्था को टक्कर देते हैं तो साथ ही मीठी वाणी बोलने पर बल देते हैं।

रहीम भी जनसामान्य को आपसी वैमनस्य छोड़ प्रेम से रहने का संदेश देते हैं जो आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाये हुए है –

*'रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरो चटकाय. टूटे पे फिर ना जुरे, जुरे गाँठ परी जाय।'*[13]

न केवल पूरा मध्यकाल बल्कि आदिकाल के नाथों सिद्धों और जैन मुनियों द्वारा लिखा गया साहित्य भी संयम, त्याग, अपरिग्रह, जीवों पर दया, सबको समानता से देखना, परोपकार, अहिंसा, सदाचार, सादा जीवन, ईश्वर के प्रति भक्ति आदि नैतिक मूल्यों पर बल देता है।

सदा से साहित्यकार का यह प्रयास रहा है कि उसके साहित्य के माध्यम से जगत का कल्याण हो। आधुनिक काल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के फलस्वरुप मनुष्य की दृष्टि इहलोक प्रधान और मनुष्य केंद्रित हुई।मनुष्य के बोध और चेतना में गुणात्मक अंतर आया । वह समय हिंदी साहित्य में भी नए मूल्यों के अभ्युदय काल का समय है,रीतिकालीन शास्त्रीयता और सौंदर्यविधान से विमुख होने का समय है। देशकी परिस्थितियों और मनुष्य की सोच में नवीन परिवर्तन दृष्टिगत होने से नैतिकता का स्वरूप भी बदला । साहित्यकारों ने राजनीतिक पराधीनता और आर्थिक शोषण का अनुभव किया। उन्होंने भारत के दारिद्रय और दुखपूर्ण जीवन की ओर ध्यान दिया। देशभक्ति की भावना को उकसाया। लोकहित का विचार आगे रखा। समाज की कुरीतियों पर कुठाराघात किया। और स्वतंत्रता प्रिय विचार प्रकट किए। भारतेन्दु- युग से प्रारंभ होने वाली साहित्यिक लड़ाई साम्राज्यवादी शक्तियों के अन्याय, अत्याचार, शोषण, सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध नए नैतिक मूल्य निर्मित करती है। भारतेंदु ईश्वर की अवधारणा में नए अर्थ भरते हैं-

*'डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो।'*[14]

मध्यकालीन ईश्वर की अवधारणा को तोड़ने वाला यह एक नया नैतिक मूल्य था जिसे वे जनता के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। जो भी डूबते हुए भारत को बचाएगा वही भारत- नाथ अर्थात भारत को संभालने वाला ईश्वर के रूप में जाना जाएगा।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के बाद राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के उभार में तेजी आती है । स्वाधीनता प्राप्ति की लड़ाई में भारतवासियों के देश के प्रति नैतिक कर्तव्य जागृत करने के लिए साहित्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। प्रेमचंद ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि ' साहित्य शास्त्र और नीतिशास्त्र का लक्ष्य एक है।..पुराने जमाने में मनुष्य की आध्यात्मिक और नैतिक सभ्यता का आधार धार्मिक आदेश था । अब यह काम साहित्य ने अपने जिम्मे ले लिया है।'[15]

मैथिलीशरण गुप्त साहित्य की सामाजिक उपयोगिता स्वीकार कर नैतिक मूल्यों के प्रसरण पर बल देते हैं ।

*"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए,उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"*[16]

वे असत्य पर सत्य की विजय, आदर्शवादिता हेतु स्वार्थ भाव का त्याग, कर्तव्य पालन, परोपकार, ईर्ष्या, निंदा, लक्ष्मी-लीला, सपूत- कपूत आदि विषयों के अंतर्गत नैतिक मूल्यों की ही स्थापना करते हैं। वे उस मनुष्य के जीवन को सार्थक मानते हैं जो दूसरों के लिए जीता है और दूसरों के लिए मरता है-

*क्षुधार्त रति देव ने दिया करस्थ थाल भी,*
*तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थिजाल भी।*
*सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर-चर्म भी दिया ,*
*अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे?*
*वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ।।*[17]

वस्तुतः साहित्यकार का लक्ष्य मनुष्य में छिपे मानव को जागृत कर मानवीय और नैतिक मूल्यों की स्थापना ही रहा है। प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' कहानी का अंत क्रूरता के विरुद्ध हृदय -परिवर्तन में आस्था व्यक्त करते हुए मानवीय नैतिक मूल्य की स्थापना करता है। विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक की 'ताई' कहानी संवेदनहीन प्रस्तर समान ताई के हृदय में करुणा का संचार कर उसके मातृवत्सल रूप को उजागर करती है। भीष्म साहनी की 'मौकापरस्त' कहानी राजनीति के निर्मम अमानवीय मुखौटे को बेपर्द कर और 'पिकनिक' कहानी निम्न वर्ग के प्रति किए जाने वाले कठोर व्यवहार का अंकन कर मनुष्य में जिस पीड़ा,करुणा और क्षोभ का संचार करती है वह प्रकारान्तर से व्यापक नैतिक मूल्य जागृत करने का प्रयास ही है। निराला की कविता 'भिक्षुक' भी इसी श्रेणी की कविता है जो करुणा व वेदना जागृत करती है -

"*दो टूक कलेजे के करता*
*पछताता पथ पर आता*
*पेट पीठ दोनों है एक*
*चल रहा लकुटिया टेक*"[18]

भवानी प्रसाद मिश्र की कविता 'प्राणी वही प्राणी है' भी इसी की पुष्टि करती है

"*तापित को स्निग्ध करे*
*प्यासे को चैन दे*
*सूखे हुए अधरों को*
*फिर से जो बैन दे।ऐसा सभी पानी है...*
*प्राणी वही प्राणी है।*"[19]

आज दलित साहित्य प्रतिरोध के स्वर में जिस मनुवादी नैतिकता की धज्जियां उड़ा रहा है, रामधारी सिंह दिनकर उसे अपनी कृति 'रश्मिरथी' में कर्ण की वेदना में स्वर दे चुके हैं जिसमें वे दलितों की पक्षधरता करते हैं--

"*एक मनुज संचित करता है*
*अर्थ पाप के बल से,*
*भाग्यवाद आवरण पाप का...*
*और भोगता उसे दूसरा भाग्यवाद के छल से।*
*जिससे रखता दबा एक जन*
*भाग दूसरे जन का*"[20]

निराला पीड़ित शुद्रजनों का प्रत्यक्ष वर्णन करते हैं--

"*चलते -फिरते ,पर निःसहाय ,*
*वे दीन ,क्षीण कंकालकाय*[21]
*-वे क्रांति का नया नैतिक जागरण गीत गाते हैं ।*
*'डमड डम डमड डम*

*डमरू निनाद है ।*

*तांडव नीचे शिव*

*प्रवाद उन्माद है ।"*[22]

निराला की क्रांति भारत को पराधीनता से मुक्त कराने भर तक सीमित नहीं थी ,वे जनता के जीवन में मौलिक परिवर्तन चाहते थे । जनता के जीवन में मौलिक परिवर्तन वही चाहता है जो जनता के हितों का अभिलाषी हो । साहित्यकार सदा से इस कर्तव्य का निर्वाह करता आया है । साहित्य का इतिहास गवाह है ।

यदि कबीर के साहित्य पर पुनर्दृष्टि डालें तो वंचित शोषित और दलितों के पक्ष में उठी आवाज़ हम स्पष्ट सुन पाएंगे -

*"तिनका कबहुं ना निंदिये जो पाँयन तर होय।*

*कबहुं उड़ीआँखिन परे, पीर घनेरी होय।।"*[23]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, जहाँ, समाज जैसे-जैसे विकसित हो रहा है उसकी सामाजिक-धार्मिक असहिष्णुता और वैमनस्य बढ़ता ही जा रहा है, कबीर की प्रासंगिकता बढ़ती ही जा रही है। समाज का सत्ताधारी, धनिक, सवर्ण , पुरुष सत्तात्मक या सामंती संस्कारों से युक्त कोई भी वर्ग या समुदाय हो उसने सदा से कुछ लोगों का शोषण किया है। इस वर्ग में वंचित, दलित, स्त्री तीनों आते हैं। यही कारण है कि बदलते वक्त के साथ दलित, स्त्री, आदिवासी तीनों जुटकर खड़े हो गए हैं और इनके द्वारा लिखित साहित्य भी नैतिक मूल्यों और संवेदना से युक्त है जो समाज को सोचने के लिए विवश कर रहा है। बदलते वक्त के साथ एक नई नैतिकता ,नए नैतिक मूल्य निर्मित होने की मुहिम जारी है जो मानव को मानव बनाए रखने की दिशा में एक प्रयास है ।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :**


**1.** हिन्दी साहित्य कोश -भाग **1**-सं धीरेन्द्र वर्मा -पृष्ठ **-353**

**2.** वही -पृष्ठ **-509**

**3.** साहित्य का शास्त्र- नित्यानंद तिवारी -पृष्ठ- **13**

**4.** वाल्मीकि रामायण -बालकाण्ड ,द्वितीय सर्ग ,श्लोक **15**

**5.** सिद्धांत और अध्ययन- बाबू गुलाबराय, पृष्ठ **75**

**6.** रामचरितमानस - तुलसीदास (बालकाण्ड,**23/5)**

**7.** हिंदी साहित्य का इतिहास- रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ **96)**

**8.** हिन्दी साहित्य कोश -भाग **1**-सं धीरेन्द्र वर्मा -पृष्ठ **-354** .

**9.** हिन्दी साहित्य का इतिहास -रामचन्द्र शुक्ल -पृष्ठ **-97**

10. रामचरित मानस -अयोध्याकाण्ड -तुलसीदास

11. रामचरित मानस -सुन्दरकांड -तुलसीदास

12. कबीर -कबीर ग्रंथावली -डा . गोविंद त्रिगुणायत

13. रहीम के दोहे

14. प्रबोधिनी -भारतेंदु ग्रंथावली- खंड 2 -पृष्ठ 683

15. साहित्य का उद्देश्य -प्रेमचंद-पृष्ठ -32

16 . भारत -भारती -मैथिलीशरण गुप्त

17 . मनुष्यता - मैथिलीशरण गुप्त

18. भिक्षुक -सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

19. प्राणी वही प्राणी है -भवानी प्रसाद मिश्र

20. रश्मिरथी -रामधारी सिंह दिनकर

21अनामिका --सूर्यकांत त्रिपाठी निराला-पृष्ठ 24

22.सांध्य काकली -84 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला-पृष्ठ

23. कबीर -कबीर ग्रंथावली -डा . गोविंद त्रिगुणायत

---

**कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें**

---